

सिर्फ आज़ादी में ही सत्य उद्घाटित हो सकता है।
इसलिए नेकी ही बुनियादी मुद्दा है, न कि सदाचारी होना,
क्योंकि नेकी ही व्यवस्था लाती है।

जे. कृष्णमूर्ति

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद

जून २०११

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, वाराणसी की त्रैमासिक हिंदी पत्रिका
सितंबर, दिसंबर, मार्च एवं जून में प्रकाशित

वार्षिक शुल्क	: रु. १००.००
दो वर्ष	: रु. १७५.००
पांच वर्ष के लिए	: रु. ४००.००
आजीवन	: रु. १०००.००

संपादक : विजय छाबड़ा

इस अंक में :

	पृष्ठ संख्या
विचार का अंत	४
आज़ादी	२४
द्विभाषी उद्घरण	बीच के पन्ने
खंड दो	
सूचना	३०

अनुवाद : बलराम

संपादकीय

मिलजुल कर बैठने, सोचने और संवाद करने की ज़रूरत तो शायद बहुत लोग महसूस करते हैं, लेकिन ऐसा क्या है जो यह सब आसानी से होने नहीं देता। आड़े क्या आता है? कहीं हम अपने ही अनुभवों से, निष्कर्षों से, आस्थाओं-मान्यताओं से इस कदर चिपक तो नहीं गए कि कोई भी दूसरा क्या कह रहा है, क्या कहना चाह रहा है, उसकी ओर पूरी तरह से तवज्जो देने में अक्षम रहते हैं? हम अपने ही बनाए किसी घेरे में फंस जाते हैं, निष्पक्ष, सहज श्रवण नहीं कर पाते।

क्या कारण है कि मिल बैठ कर सोचना, जिरह में न फंसकर, खुले दिमाग से संवाद करना, समाज की तमाम मान्यताओं की गुलामी के प्रति जागरूक रहकर चर्चा करना अक्सर संभव नहीं हो पाता? क्या गहरे में निजी सुरक्षा की मांग ने इंसान को इतना बहका दिया है जिसकी वजह से वह गुलामी को, ज़िल्लत को, अपनी पीड़ा को ढोए चला जाता है? भले ही वह आज़ादी का, मुक्ति का गुणगान करता फिरे! या फिर जुदा-जुदा इकाई होने की हमारी मान्यता एक जड़-संकल्प बन कर हमारी आंखों पर पर्दा डाल रही है, हमें खुलेपन से मिलकर सोचने-समझने से, संवाद करने से वंचित रख रही है?

ऐसे ही सवालों की बौछार लिए यह अंक प्रस्तुत है।

विचार का अंत

हम यहां वार्तालाप के सात दौर करने वाले हैं और साथ ही सवाल-जवाब के लिए भी हमारे पास खूब समय रहेगा, तो हम आहिस्ता-आहिस्ता, धीरे-धीरे मानवीय जीवन की इस पहली की सारी परतों को खोलेंगे, हर पहलू पर गौर करेंगे। सो अगर कहीं मैं पहले से कही बातों को कभी दोहराता हूं तो उतावले मत होइएगा, मेहरबानी करके थोड़ा धीरज रखियेगा। हम यहां ध्यान, प्रेम, करुणा, भय तथा मानवीय जीवन की हर पीड़ा पर गौर करेंगे—दुख, डर और हिंसा—इन सभी मुद्दों पर बड़ी सावधानी से, समझदारी से, तर्कसंगत ढंग से वार्तालाप करेंगे, उनकी गहराई में जायेंगे।

दिनों-दिन यह बात साफ हो रही है कि मुद्दा वातावरण का नहीं है, यहां तक कि भुखमरी, गरीबी या फिर बेइन्साफी अथवा तमाम दूसरी बातें भी असल मुद्दा नहीं हैं, भले ही हम इन सबसे घिरे हुए हैं। जो बात उभर कर सामने आ रही है वह है कि आज आदमी खुद ही इस संसार के लिए खौफ बनता जा रहा है। खुद हम ही एक दूसरे को मिटाने पर तुले हुए हैं। लोग खुद को बांट रहे हैं कबीलों में, कौमों में, वर्गों में, हर तरह के विभाजनकारी और तबाहकून रास्तों पर बढ़े चले जा रहे हैं। कम्युनिस्ट हों या सोशलिस्ट, दुनिया के तमाम राजनेता कभी भी इस संसार को नहीं बदलेंगे, ना ही साईंसदान ही ऐसा करेंगे। खुद से बाहर ब्रह्मांड को खंगालने वाले खगोलीय भौतिकशास्त्री भी इस मसले का हल नहीं ढूंढ पायेंगे। इस तरह आप, मैं तथा अन्य सब, हम सब लोग ही पूरी दुनिया में अराजकता फैलाने पर तुले हैं, एक-दूसरे के लिए बहुत बड़ा खतरा बन गए हैं हम लोग, खौफ बन गए हैं। हमारे धर्म, संस्थागत विश्वास, रीति-रिवाज़

और कट्टर मत-सिद्धांत और ऐसी ही ऊल-जलूल बातें लोगों को बांट रही हैं—जंग या फिर जंग की तैयारी, परमाणु बम, दुनिया की सारी तस्वीर आप के सामने है। हम में से कुछ लोग इससे भागने की कोशिश करते हैं किसी छोटे से कम्यून का हिस्सा हो कर, किसी मठ में दाखिल हो कर या एशिया से आए किसी गुरु के अनुयायी हो कर हम इस दानवीय दुनिया से बचने का प्रयास करते हैं, लेकिन संभवतः वो भी इस मसले का कोई हल नहीं कर सकते। जो है उससे आप भाग नहीं सकते। ना विचारधाराओं ने ही आदमी का कुछ संवारा है। ठीक इसके उलट कम्युनिस्ट विचारधारा, हिंदू, बौद्ध और ईसाई विचारधाराओं ने आदमी को और भी अधिक बांटा है, विचारधाराएं, धारणाएं उसे बरबाद ही कर रही हैं। क्योंकि संसार में इतना ज़्यादा उलझाव है सो आदमी खुद को किसी ना किसी चीज़ से जोड़ने की कोशिश करता है, किसी ग्रुप के साथ, किसी विचार या फिर किसी गतिविधि से। यह जो किसी चीज़ के साथ जुड़ना है, प्रतिबद्धता है, किसी भी फलसफे या फिर बे-सिर पैर के गुरुओं के साथ, यह सब किसी ना किसी चीज़ पर निर्भर होने की, किसी विश्वास, विचार या संकल्प का आसरा लेने की आदमी की ख्वाहिश ही है।

हम आशा करते हैं कि इस वार्तालाप के दौरान इन सारी चीज़ों पर हम समझ-बूझ के साथ विचार कर पायेंगे, एक दूसरे का खंडन-मंडन करते हुए नहीं, युक्तियों, विरोधी विचारों या टकराते निष्कर्षों के साथ नहीं, बल्कि साथ-साथ चलते हुए, आप और मैं, यह वक्ता, इन मामलों पर संजीदगी से मंथन कर पायेंगे। और अगर यह संभव हो, साथ-साथ सोचना—सहमत होना नहीं, ना ही विरोध करना, मतों या विचारों में उलझते हुए नहीं—बल्कि एक साथ हो कर, हम में से हर कोई इन मामलों पर सोचे, मिल कर। अगर हम किसी अनुभव के साथ जुड़े हुए हैं और उससे चिपके रहते हैं तो संभवतः हम साफ-साफ और

साथ-साथ नहीं सोच सकते। और अगर हम बहुत पढ़े-लिखे हैं, ढेरों किताबें पढ़ी हैं हमने, सिद्धांतों, विचारों या फलसफे से लदे पड़े हैं, भले ही ये मार्क्सवादी हों या ईसा के धर्म सिद्धांत हों अथवा हिंदू, इस सूरत में हम साथ-साथ विचार नहीं कर सकते। यह बात तो साफ है।

यानी, अगर आप बहुत बड़े विद्वान हैं, अगर किसी विचार से चिपके हुए हैं या उन अनुभवों से जो खुद आप को हुए हैं, अगर आप उन्हें छोड़ना ही नहीं चाहते तो मिल कर सोचना भला कैसे संभव होगा? यही अनुभव, निष्कर्ष तथा विश्वास आप को संवाद से रोकते रहेंगे। सो मेहरबानी करके अगर आप इन सब को एक तरफ कर देंगे, अगर कर पायें तो, तब हम एक-दूसरे के साथ संवाद कर पायेंगे, क्योंकि वक्ता के न तो कोई विश्वास हैं, ना ही कोई मूल्य, वह किसी समूह या मज़हब से भी नहीं जुड़ा, ना ही वह आप को किसी खास दिशा में सोचने को प्रेरित करने के लिए किसी तरह का प्रचार ही कर रहा है, वो आप को अपनी बातों से राज़ी करने का प्रयास भी नहीं कर रहा। इस मुद्दे पर हमें शुरू से ही एकदम साफ रहना होगा। मैं आप को कुछ मान लेने को भी नहीं कह रहा, यहां कोई अनुयायी नहीं है, ना ही कोई पंथ है, आप को किसी तरह से समझाने-बुझाने की भी मेरी कोई मंशा नहीं है, सिर्फ इसी सूरत में ही हम मिल सकते हैं एक ही धरातल पर, एक ही स्तर पर, बराबरी के रिश्ते में। तभी हम मानवीय जीवन की इस अद्भुत घटना का साथ-साथ निरीक्षण कर पायेंगे। और मुझे उम्मीद है कि यह बात एकदम साफ हो गयी होगी।

सबसे पहले तो मैं यह पूछना चाहूंगा, अगर आप इज़ाज़त दें तो, कि क्यूं आदम जात जो लाखों करोड़ों बरसों से इस धरती पर जीती चली आई है, क्यूं इतने लंबे अर्से बाद भी, इतने अनुभवों और दुखों के बाद भी, क्यूं वह उसी पुराने ढर्रे पर खिंची चली जा रही है? आखिर गलती कहां है? इतने लाखों

साल बाद आखिर आदमी के दिलो-दिमाग को हो क्या गया है? मैं नहीं जानता कि आप ने खुद से कभी यह सवाल पूछा है या नहीं, क्यूं लाखों सालों बाद, इस सारे विकास और ज्ञान के भंडार के बावजूद, अनुभवों अथवा रोज़ाना के जीवन की अंतहीन पीड़ाओं के बावजूद, क्यों हम आज भी वैसे ही हैं? क्या आप मेरे सवाल को समझ रहे हैं? क्यों इतने लंबे अर्से बाद भी हम दुख उटाए जा रहे हैं, एक-दूसरे से नफरत किए जा रहे हैं, हम आज भी किसी अनोखे और निजी भ्रम में जिए जा रहे हैं। हम कबायली क्यों हैं, कुनबापरस्ती से जुड़े हुए? आप मेरे सवाल को समझे? क्यों? आखिर इस सब की वजह क्या है?

हज़ारों दार्शनिक हुए यहां, वामपंथी, दक्षिणपंथी और मध्यमार्गी, हर तरह के धार्मिक रहनुमा हुए, कुछ ऐसे कथित साधु जो कतई साधु नहीं थे बल्कि शायद एक तरह के मनोरोगी थे। क्यों ईसाईयों के धर्मशास्त्री और संभवतः एशिया में उससे भी कहीं लंबे अर्से से चले आ रहे पंडित तथा विद्वान ज्ञान के इस विशाल भंडार के बावजूद हमारी एक भी समस्या को सुलझाने में कामयाब नहीं हो पाए। समझे आप? यह बहुत ही गंभीर सवाल है, क्यों आदमी, आप या फिर कोई दूसरा, क्यूं हम सब इस तरह से जी रहे हैं? क्या वजह है इस सब की?

शुरू से ही आदमी विरोधों में जीता आया है, सिर्फ अपने वातावरण के साथ ही नहीं, बल्कि अपने पड़ोसी, अपनी पत्नी या उस औरत के साथ जिसके संग वह एक ही खोली में रहने को मजबूर है। निरंतर कलह, सतत क्लेश, अंतहीन दुख, पीढ़ी-दर-पीढ़ी वही संताप। हम कोई बड़ा-चढ़ा कर पेश नहीं कर रहे, ये तो तथ्य हैं। हम इतिहास से वाकिफ हैं, जो कि आदमी की कहानी ही है—उसकी हिंसा की, युद्धों की, अपने या अपने परिवार के लिए भूमि इकट्ठा करने की। आदमी हमेशा से ही विनाशक रहा है। सभी धर्मों ने उसे थोड़ा शांत करने की कोशिश की है, थोड़ा सभ्य बनाने, कुछ विनम्र और ज़िम्मेदार बनाने की।

ज़ाहिर है कि वे भी कामयाब नहीं हुए। ईसाई प्यार-मुहब्बत और शांति की बातें करते हैं लेकिन वे करोड़ों लोगों के कत्लेआम के लिए ज़िम्मेदार हैं—शायद ईसाईयों ने ही दूसरी नस्लों के मुकाबले मानवता का सबसे ज़्यादा नाश किया है। फिर वह एशियाई जगत है अपने अंधविश्वासों के साथ, बेशुमार देवी-देवताओं के साथ, लेकिन वे इतने हिंसक नहीं रहे। उनके धर्म कहते हैं, हिंसा मत करो, लेकिन जब हालात मजबूर करते हैं वे भी हिंसा पर उतर आते हैं, उतने ही विध्वंसक जितना कि पश्चिम।

सो इस सब कुछ को देखते-परखते हुए, जिसे हर किसी ने देखा है, सोचें इस बारे में, क्यों लाखों करोड़ों साल बाद भी ऐसा ही चल रहा है, आदमी के मन को आखिर हो क्या गया है, कहां कुछ गलत घटा है? समय के लंबे दौर में दिमाग का विकास हुआ है। हमारा दिमाग हज़ारों सालों के विकास का ही परिणाम है। यह महज़ आपका ही दिमाग नहीं है, हालांकि आप ऐसा सोचते हैं कि यह व्यक्तिगत दिमाग है, सिर्फ आपका। लेकिन अगर आप थोड़ा गौर से देखें, यह मानवीय मस्तिष्क है, आनुवांशिक तौर पर, नस्ली तौर पर यह दिमाग युगों-युगों में विकसित हुआ है, यह तो साफ है। यह हमेशा बंधे-बंधाए ढर्रों पर ही चलता आया है, हमेशा सुरक्षा की तलाश में रहा है, जिस्मानी तौर पर भी और मानसिक तौर पर भी। सुरक्षा, सदा ही मूल मांग रही है, जिसे हर हाल में पाना ही है। और क्या यही वर्तमान मुसीबतों, अफरातफरी, उलझनों तथा आतंक का कारण तो नहीं? आप समझे? क्या यही वजह है—निजी सुरक्षा की यह अंतहीन मांग? हालांकि यह दिमाग, आपका और मेरा दिमाग, हर दिमाग बहुत लंबे क्रमविकास का ही परिणाम है, यह आपका निजी नहीं, मानव जाति का दिमाग है। हम इस बारे में बात कर सकते हैं, लेकिन सवाल हम थोड़ी देर बाद उठायेंगे। अब तो साईंसदान भी इस नतीजे पर पहुंचने लगे हैं—कम से कम उन में से कुछ तो लाज़मी ही—कि यह दिमाग तुम्हारा

हमारा नहीं है, यह तो समय के साथ-साथ विकसित हुआ है, वृद्धि हुई है इसमें।

तो यह इन्सान का दिमाग है। और यह दिमाग सुरक्षा की मांग करता है—आंतरिक और बाहरी तौर पर। तो क्या यही संसार की इस भयानक अराजकता का कारण है? आप जानते हैं कि अगर किसी चीज़ की कोई वजह है तो उसे खत्म भी किया जा सकता है, ठीक? समझ रहे हैं आप? अगर किसी वजह से शरीर में दर्द है तो उस दर्द का खात्मा संभव है, वे दूँड सकते हैं इलाज। यदि मानसिक परेशानी की, बिखराव और दुख-तकलीफों की कोई वजह है तो उस वजह को दूँडा और खत्म किया जा सकता है। तो जहाँ कारण है, शुरूआत है, वहाँ अंत भी है। और क्या हमारा वर्तमान पतन, यह संकट, हज़ारों बरस की इस दौड़ का ही तो नतीजा नहीं? क्या यह व्यक्ति के नाते वजूद या अलगाव ही तो वजह नहीं? आप सब समझ रहे हैं ना? ज़रा गौर फरमायें! मैं यहाँ कोई नया नियम नहीं बना रहा। हम मिल कर इस सब के बारे में सोच रहे हैं। सो आप भी वक्ता के साथ-साथ अपने दिमाग को थोड़ा कष्ट दें, महज़ सुने भर नहीं, अगर आप सावधानीपूर्वक सुनेंगे, सजगता के साथ, तो शायद हमारे बीच संवाद संभव हो पाए। लेकिन अगर आप बे-ध्यानी से सुनेंगे, लापरवाही से, दूसरी तमाम बातों के बारे में सोचते हुए, तो हमारे दरम्यान कोई संपर्क नहीं हो पाएगा, कोई संवाद नहीं होगा।

हम पूछ रहे हैं, और यह बहुत संजीदा मामला है, हम साथ मिल कर यह पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं कि क्या इन सारे दुख-झमेलों की कोई वजह है, इस तमाम अफरातफरी, अनिश्चितता और आतंक का क्या कोई मूल कारण है। अगर हम इसे दूँड सकें, ऐसा नहीं कि कोई आप को बताए कि हां यह कारण है और आप चुपचाप उसे मान लें, बल्कि आप खुद उसे

हूँ, निरीक्षण करते हुए उस तक पहुंचें, तब आप उस कारण से आज़ाद हो जायेंगे और साथ ही उसके प्रभाव से भी।

सो हम पूछ रहे हैं कि क्या इस मुसीबत, इस उलझन का मूल कारण यह नहीं है कि आदमी का दिमाग, जीवन के हर स्तर पर, सुरक्षा की ताक में रहता है? क्या यही वजह है? हालांकि जिस्मानी तौर पर तो सुरक्षा लाज़मी है—रोटी, कपड़ा और सिर पर छत तो हर किसी को चाहिए ही। लेकिन मानसिक रूप से आंतरिक स्तर पर क्या कोई सुरक्षा है भी, हालांकि कोई इसकी चाहना कर सकता है। बाद में हम इस पर और भी गहराई से चर्चा करेंगे। फिलहाल हमें यह पता लगाना है कि क्या सारी गड़बड़ी उस विचार का, उस धारणा का ही तो नतीजा नहीं कि हम सब जुदा-जुदा इकाईयां हैं? क्योंकि हमने कभी इस सवाल की खोजबीन ही नहीं की कि हम सब का दिमाग असल में मानवता का ही सांझा दिमाग है। हम उसी की जांच-पड़ताल कर रहे हैं। हो सकता है कि सुरक्षा की इसी चाह ने ही इस धारणा को जन्म दिया हो, व्यक्ति की अवधारणा को—मैं और तुम। हम एक समूह के रूप में किसी दूसरे समूह के खिलाफ। क्या यह कारण है? या कोई दूसरा कारण भी है, मसलन विचार, आदर्श, जो कि ज्ञान की बुनियाद हैं। यह शायद थोड़ा मुश्किल है। आप समझ रहे हैं न हम क्या कह रहे हैं? क्या अब तक हम साथ-साथ चले हैं? देखिये मैं खुद से ही बात नहीं कर रहा हूँ। इतने खराब मौसम में आप ने यहां तक आने का कष्ट उठाया है, सुख-आराम छोड़ कर आए हैं तो मेहरबानी करके थोड़ा ध्यान दें—अगर आपकी इच्छा हो तो।

क्योंकि ज्ञान इस संसार में प्रधान हो चुका है। तकनीकी ज्ञान—अगर आपको अच्छा बढई बनना है तो आप को बरसों तक सीखना होगा, लकड़ी के बारे में, औजारों के बारे में, डिज़ायन के बारे में ढेरों जानकारियां इकट्ठी करनी होंगी, और फिर उनका दक्षता से इस्तेमाल करना होगा। अगर आप विद्वान

हैं तो खूब सारी किताबें पढ़ते हैं और सारी जानकारियों को दिमाग में जमा रखते हैं, ज्ञान को अहमियत देते हुए आप यह मानने लगते हैं कि धीरे-धीरे समय के साथ जैसे-जैसे आप और ज़्यादा ज्ञान इकट्ठा करते जायेंगे वो आपको स्वर्ग की ओर ले जायेगा। एक सर्जन के रूप में ज्ञान या एक दार्शनिक के रूप में, सिर्फ बाहरी चीज़ों के बारे में नहीं बल्कि आदमी की मानसिक संरचना के बारे में, मन के स्वरूप के बारे में भी, क्या यही ज्ञान तो इन सारी मुसीबतों की जड़ नहीं? समझ रहे हैं न आप? उम्मीद है कि बात आप की पकड़ में आ रही होगी। हम यहां किसी को खुश करने की कोशिश नहीं कर रहे, न ही मनोरंजन कर रहे हैं। इस काम के लिए वहां सिनेमा है, फुटबाल है, टेनिस के मैच अथवा हर तरह का मनोरंजन है। यह कोई बौद्धिक ऐय्याशी भी नहीं, और अगर मैं इस भदे शब्द का इस्तेमाल करूं तो यह किसी तरह का रूहानी मनोरंजन भी नहीं है, न ही रोमांटिक या भावनात्मक खेल है। क्योंकि यह एक बहुत ही गंभीर मामला है जिसकी हम छानबीन कर रहे हैं : क्यों ढेरों ज्ञान इकट्ठा करने के बाद भी आदमी आज भी वैसा ही है, क्यों लाखों-लाखों सालों बाद भी कुछ बदला नहीं सिर्फ थोड़ा सभ्य हो गया है, ऊपर से थोड़ा रंग-रोगन पोत लिया है उसने लेकिन अंदर से वैसा ही है, मानसिक तौर पर वहशी, हिंसक, सिर्फ एक-दूसरे के साथ ही नहीं जानवरों के साथ भी, आसपास के सारे ही संसार के साथ—क्यों? हमें क्या हो गया है? आप मेरा सवाल समझ रहे हैं न?

जैसा कि हमने कहा, जहां कारण है वहां उस कारण का अंत भी है। अगर हम इस नियम को समझ पायें, अगर आप के दांत में दर्द है तो उसका कोई कारण है, और उसी में उस दर्द का अंत भी छुपा है। उसी तरह जहां मानसिक कारण है वहीं उस कारण का अंत भी मौजूद है, ठीक? मेहरबानी कर साथ में रहें। एक जंग होती है, जिसका कोई कारण हैं—आर्थिक, कौमी

मान-सम्मान, सत्ता या कुछ और। जंग के कुछ कारण हैं, कौमों का बंटवारा हो या विचारधाराओं का, तानाशाही, लोकतंत्र, कथित जमहूरियत और निरंकुशता। और जब कोई यह देख लेता है कि जंग इन सबका ही नतीजा है, जंग की कोई वजह है इसीलिए इस जंग का अंत भी संभव है, लेकिन लगता है कि कोई इसे खत्म करना ही नहीं चाहता। सो अगर हम इस नियम को समझ पायें, इस सत्य को कि *जहां कारण है, तो उस कारण को खत्म भी किया जा सकता है!* आप समझे इसे?

सो हम मिल कर यह देखने की, यह पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं कि यह अद्भुत बात जो हमारे जीवन में घट रही है आखिर इसकी वजह क्या है। उस कारण के गर्भ में, उसके मूल में क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं कि शुरू से ही आदमी ने कोई गलत मोड़ ले लिया हो, मेरा मतलब है आदमी और औरत दोनों ही, अगर मैं औरत का ज़िक्र ना भी करूं तो भी मेरी मुराद दोनों से ही है। कृपया इस पर गौर करें, मेरे साथ-साथ छानबीन करें इसकी।

आखिरकार क्यों हम दुखी हैं? अगर आदमी ईश्वर की संतान है तो फिर ईश्वर तो लाज़िमी ही कोई भयानक तत्त्व होगा, कोई खौफनाक हस्ती जो आदमी को इस नरक में से गुज़ार रही है, ठीक? अगर उसने हमें बनाया है तो वो जीती-जागती कोई अराजकता का रूप होगी क्योंकि हम उसी अराजकता में जीते हैं। अगर उसने हमें बनाया और हम एक दूसरे का गला काट रहे हैं, अपहरण कर रहे हैं, आतंक मचा रहे हैं, बम फेंक रहे हैं—ओह, आप सब अच्छी तरह जानते ही हैं जो भी इस दुनिया में हो रहा है, बेइंतहा बेहूदगी। अगर आप उस की छवि में ढले हैं तो वो भी कुछ भयंकर ही होगा। इसमें कोई शुबहा नहीं है, एकदम स्पष्ट है कि आदमी खुद ही इस सबके लिए ज़िम्मेदार है। हमसे बाहर और कोई दूसरा नहीं है, कोई देवी-देवता, कोई फरिश्ता या कोई ब्रह्म इसके लिए उत्तरदायी

नहीं है, हम ही हैं। इस सबकी वजह क्या है? अब आप समझे?

क्या स्वार्थ वजह है इसकी? क्या यह इकट्टा किया हुआ ज्ञान है इसकी वजह—कृपया ध्यान से सुनें। हम ज्ञान के खिलाफ नहीं हैं, वो लाज़मी है—कार चलाने के लिए, कोई भाषा सीखने के लिए, इलेक्ट्रानिक्स की फील्ड में काम करने के लिए या और भी बहुत सी चीज़ों के लिए ज्ञान ज़रूरी है। लेकिन यह मानसिक ज्ञान जिसे हमने पीढ़ी-दर-पीढ़ी जमा किया है, क्या वो वजह है? कहीं यह तो कारण नहीं कि हमने इस ज्ञान को मानसिक धारणाओं में, विश्वासों एवं आस्थाओं में ढाल लिया है—समझ रहे हैं आप? मेहरबानी करके ऊँघिए नहीं! अगर आपका सचमुच ही इस सब से सरोकार है, जैसा कि स्वाभाविक रूप से सब का होना ही चाहिए, कि क्यूं हम कथित सभ्य आदमी, जिनके पास कारें हैं, चिकित्सा के चमत्कार हैं, ट्रांसपोर्ट और संचार की कमाल की व्यवस्था है, ढेरों खूबियां हैं जिनकी, लेकिन अंदरूनी स्तर पर, मन के धरातल पर हम वैसे ही जिए चले जा रहे हैं, क्यूं? क्यों हम एक-दूसरे के लिए आतंक बने हुए हैं, हम इस धरती पर सबसे खतरनाक प्राणी बन गए हैं, नहीं? कभी-कभार हम दयालु हो सकते हैं, प्रेम-पूर्ण, निस्वार्थी, किंतु यह अलग-थलग व्यक्तिगत निस्वार्थ और ऐसा ही और भी बहुत कुछ समस्या का समाधान नहीं करता। गरीबी, भुखमरी या बीमारी मसला नहीं है, समस्या हैं हम, हमारी चेतना।

तो हम कैसे पता लगायें कि इस गिरावट, इस निर्दयता, इस उपेक्षा और वहशीपन की वजह क्या है? कैसे पता लगायेंगे आप? वक्ता के द्वारा—कि यह आप को बता दे? मुझे पता है कि आप यही चाहते हैं। यही सबसे आसान हल होगा, या नहीं? क्योंकि हमारा मन हमेशा आसान राह की तलाश में रहता है। परंतु मैं आप को बता नहीं सकता, और न ही बताऊंगा। तो कहां हैं आप, समझे?

मेहरबानी करके इसके रू-ब-रू होइए, क्योंकि इसका पता लगाना आपकी ज़िम्मेदारी है—संसार की इस हालत का कारण खोजना आपकी ज़िम्मेदारी है।

अगर आप के दिल में प्रेम है, बेहद करुणा का भाव है तो यह सवाल भी बना रहता है। आप किसी के अनुयायी हो सकते हैं, रहनुमा जितने ही ज़्यादा एशियाई होंगे उतने ही ज़्यादा रोमानी और बेहूदा भी होंगे। उनमें से कोई भी ऐसे सवाल नहीं पूछता, उनके पास इसका जवाब है भी नहीं। उनके पास सिर्फ सिद्धांत हैं। हिंदुओं ने इस मामले में खोजबीन की और अपना एक सिद्धांत गढ़ लिया। ईसाई मूल पाप की बात करते हैं जोकि बहुत ही सुविधाजनक है, फिर आप किसी मसीहा या उससे जुड़ी तमाम बातों में यकीन कर सकते हैं।

सो एक इन्सान होने के नाते आप कैसे उत्तरदायित्व निभायेंगे, क्योंकि आपका दिमाग, आपके मन की सारी की सारी संरचना लाखों-लाखों साल का परिणाम है, यह संरचना आपकी ही नहीं है, दुनिया का हर शख्स इसी से जुड़ा हुआ है। क्योंकि चीन में हों या सुदूर अथवा मध्य पूर्व में या फिर पश्चिम में हर जगह वो दुखी है उसमें प्रेम का, ज़िम्मेदारी का कोई भाव नहीं, क्रूरता से भरा है वो, इसीलिए तो तलाक हैं, हर तरह का वहशीपन देखने को मिलता है। हममें से हर कोई इसका हिस्सा है। अगर सचमुच ही आप को इस सबके लिए ज़िम्मेदारी का एहसास है, जो कि होना ही चाहिए, संसार में जो भी घट रहा है यदि आप उसके बारे में थोड़ा भी सचेत हैं, सजग हैं, तो आप कैसे खोजबीन करेंगे, कैसे पता लगायेंगे। आप मेरे सवाल को समझे? क्या आप सचमुच ही अपना दिलो-दिमाग और अपना वक्त इस खोजबीन में लगाने को राज़ी हैं? इस पर नहीं कि ध्यान कैसे करें। वह मामला तो बहुत बाद का है। योग क्या है या ऐसी ही तमाम बातों की चर्चा नहीं। बाद में हम उन पर भी बात कर सकते हैं, लेकिन यह उन सबसे कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण

है क्योंकि अगर आप कारण को खोज लेते हैं उसी में उसका अंत है। अगर हम यह खोज लेते हैं कि दुनिया में हर आदमी के दुख का कारण क्या है, तो उस दुख का अंत किया जा सकता है।

मनुष्यों में इतना टकराव क्यों है, इसकी वजह क्या है? वजह मिल जाए तो उसका अंत संभव है। समय के आयाम में नहीं, जिसका मतलब है कि हम कहें, ठीक है, इसका पता लगाने में मुझे समय तो लगेगा, पूरा हफ्ता मैं इस पर ध्यान करूंगा, सोचूंगा इस बारे में, मनन और चर्चा करूंगा। यह फिर वही बात होगी, कारण की खोज में हम फिर समय को दाखिल कर लेंगे। कृपया इसे समझें—हमारे दिमाग समय की उपज हैं—यानी क्रमिक विकास। एक छोटी सी, अति सूक्ष्म कोशिका या सैल से ले कर इतने पेचीदा आदम रूप तक पहुंचने में हज़ारों बरस लगे हैं, जो कि समय है। और हम समय की ही भाषा में सोचते हैं। यानी, कैसे मैं उस कारण को खोज सकता हूँ? आप मेरा मतलब समझें? और अब हम यहां इस चर्चा में कुछ समय लगाने जा रहे हैं। समझें आप मैं क्या कह रहा हूँ? क्या आप सहमत हैं कि आपका दिमाग समय की उपज है? हालांकि यह दिमाग पैदा होता है और पैदा होते वक्त, बच्चे के रूप में बहुत छोटा होता है यह, लेकिन जैसे-जैसे यह बढ़ता जाता है, शक्तिशाली होता चला जाता है और प्राणवान। जैसे-जैसे दिमाग को ज़्यादा खून मिलता है वह विकसित होता है, बढ़ता है। यही आदमी के होने का ढंग है और यह ढंग हम सबके लिए एक-सा है, यह सिर्फ आपका नहीं है, आपका छोटा सा, तुच्छ दिमाग। यह सारी मानवता का दिमाग है, जो दुख उठाता है, कलाकारी करता है, हिसाब-किताब रखता है, छवियां गढ़ता है, देवी-देवताओं का सृजन करता है—समझें। यह सब हमारे साथ एक सा है।

दिमाग समय के ही दायरे में जीता है, ठीक?—उसी में दौड़ता है। आप अपने ही ज़हन में झांक कर देखें कि यह कैसे

...Is freedom a result, a reward, a thing that lies at the end of a process? Is it freedom when you free yourself from anger? Or is it being able to do what you want to do? Is it freedom when you find responsibility a burden and push it aside? Is it freedom when you resist, or when you yield? Can thought give this freedom, can any action give it? Is freedom the opposite of slavery? Is it freedom when, being in a prison and knowing you are in prison and being aware of all the restraints of the prison, you imagine freedom? Can imagination ever give freedom or is it a fancy of thought? What we actually know, and what actually is, is bondage - not only to outward things, to the house, to the family, to the job - but also inwardly, to traditions, to habits, to the pleasure of domination and possession, to fear, to achievement and to so many other things. When success brings great pleasure one never talks about freedom from it, or thinks about it. We talk of freedom only when there is pain. We are bound to all these things, both inwardly and outwardly, and this bondage is what is. And the resistance to what is, is what we call freedom. One resists, or escapes from, or tries to suppress what is, hoping thereby to come to some form of freedom. We know inwardly only two things - bondage and resistance; and resistance creates the bondage.

Excerpt from: '*The Only Revolution*'
India 1969

...क्या स्वतंत्रता, आज़ादी एक नतीजा या निष्कर्ष है, एक पुरस्कार, यानी ऐसा कुछ जो कि एक प्रक्रिया के अंत में निहित हुआ करता है? क्या स्वतंत्रता का भान तब होता है जब आप अपने आप को क्रोध से मुक्त पाते हैं? या इससे अभिप्राय है बस जो जी में आये वो कर पाना? क्या यह स्वतंत्रता कहलायेगी जब आप अपनी जिम्मेदारी को एक बोझ समझकर एक तरफ धकेल देते हैं? या जब आप विरोध-प्रतिरोध में अटकते हैं, या फिर जब आप झुक जाते हैं, बात मान लेते हैं? क्या भला सोच या कोई भी गतिविधि आपको मुक्त कर सकती है, स्वतंत्रता दिला सकती है?...

स्वतंत्रता क्या गुलामी का विपरीतार्थक है? क्या यह स्वतंत्रता कहलायेगी जब आप एक जेल में हैं और यह जानते हुए कि आप जेल में रह रहे हैं और जेल की सभी मजबूरियों से वाकिफ हैं आप आजादी की कल्पना करते हैं? कल्पना भला कभी स्वतंत्रता दिलाने में सक्षम हो सकती है या यह कोरी कल्पना है? हम जो असल में जानते हैं और जो यथार्थ में है, वह है बंधन—न केवल बाहरी वस्तुओं का, घर का, परिवार व नौकरी-चाकरी का, बल्कि अपने अंदर संजोयी दुनिया का, परंपराओं का, आदतों का, प्रभुत्व व अधिकार जमाने की ऐय्याशी का, भय का, उपलब्धि का और न जाने कितनी और तमाम चीज़ों का। जब सफलता मिलने पर बेहद खुशी का एहसास होता है, तब कौन आज़ादी की बात करता है, तब किसे इस बारे में सोचने की पड़ी है! हम स्वतंत्रता की बात तभी करते हैं जब पीड़ा होती है, दर्द होता है। हम इन सब चीज़ों से जकड़े रहते हैं, भीतर और बाहर दोनों तरह से, और यह बंधन है 'जो है'। और इस 'जो है' से निपटने के लिये जो अवरोध-प्रतिरोध आ धमकता है उसे हम आजादी की संज्ञा दे देते हैं। 'जो है' के लिये हम तैयार नहीं होते, पलायन करते हैं, या उसे दबाने-हटाने की कोशिश करते हैं, इस उम्मीद में कि शायद आज़ादी का कोई तो रूप हमारे हाथ लग ही जाये। हालांकि अंदर से हमें दो ही बातों से परिचय रहता है—बंधन और प्रतिरोध, और प्रतिरोध बंधन निर्मित किये चलता है।

काम करता है, कैसे सोचता है। यह वक्ता दिमाग के कार्यक्षेत्र में कोई माहिर नहीं है, हालांकि उसने कई माहिरों से, विशेषज्ञों से बात की है, जिनमें से कुछ सहमत हैं तो कुछ असहमत भी हैं। कुछ तो काफी हद तक वक्ता के साथ इत्तफाक रखते नज़र आते हैं, लेकिन कुछ लोगों के लिए यह महज़ इक बकवास है। इस ओर थोड़ी तवज्जो दीजिए—साईंसदान पदार्थ की खोज में जुटे हैं और इसी खोज के ज़रिए वे परम सत्य का पता लगाना चाहते हैं, आप समझ रहे हैं न? बात यह है कि पदार्थ के माध्यम से वे परम तक पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं। हम पदार्थ ही तो हैं, नहीं क्या? आप पदार्थ हो, आपका दिमाग पदार्थ है। किंतु वे बाहर जा कर खोजबीन करते हैं, खुद अपने से शुरूआत नहीं करते? समझे, मैं क्या कह रहा हूं? अगर वे खुद से ही शुरू करें तो एक ऐसे मुकाम पर पहुंचेंगे जो अद्भुत रूप से मौलिक होगा, गज़ब का सृजनात्मक, काल की पहुंच से बाहर। लेकिन उसके लिए बहुत ही शिदत से खुद को देखने की ज़रूरत होगी, उस अवलोकन में पूरी ऊर्जा डाल देनी होगी। लेकिन कोई भी यह करना नहीं चाहता क्योंकि यह बहुत प्रचलित नहीं है। उससे आप को कुछ मिलने वाला नहीं है, न पैसा, न सत्ता, न पावर, न पोजीशन। लेकिन सिर्फ खुद से गुज़र कर ही, जो कि पदार्थ ही है, सिर्फ खुद से हो कर ही आप उस बिंदु तक पहुंच सकते हैं जहां सब वस्तुओं का स्रोत है, जगत का मूल है।

सो हम पूछ रहे हैं : कैसे, किस तरह से कोई इस सब के मूल कारण तक पहुंचे? या फिर बहुत से कारण हैं वहां? पहला कारण यह हो सकता है चूंकि शुरू से ही आदमी कुदरत को जीतने में जुटा रहा है, इसी से उस ने यह विचार पक्का कर लिया हो कि वो अलग है, दूसरे व्यक्तियों के खिलाफ वह एक अलग व्यक्ति है। या फिर निरंतर चलता यह विचार, अलग-थलग ईकाई होने का संकल्प हो सकता है दूसरा कारण हो। कुछ और भी हो सकता है, शायद मानसिक ज्ञान का यह ज़बरदस्त भंडार

ही तीसरा कारण हो। राह बहुत दुश्वार है, सावधानी से इसमें उतरें।

पिछले बीस-तीस या पचास-साठ सालों में आपने एक अलग व्यक्ति के रूप में ही ज्ञान इकट्ठा किया है—मेरे अनुभव, मेरे विश्वास, मेरी चेतना। और यही विश्वास, यही धारणाएं, ये अनुभव, आखिर ये सब ज्ञान ही तो हैं, आपका इकट्ठा किया हुआ सारा मानसिक ज्ञान, मनोवैज्ञानिक खजाना, क्या वह कारण है? या फिर इनमें से कोई भी नहीं। सवाल को समझ रहे हैं न आप? क्या यह बहुत मुश्किल होता जा रहा है, कुछ ज़्यादा गूढ़-अमूर्त? जी नहीं, हरगिज़ नहीं, यह बिल्कुल भी अमूर्त नहीं है, यह कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे आप किसी किताब में पढ़ें और फिर भूल जायें, यह किसी दार्शनिक की खोज नहीं जिसे पढ़ कर आप सहमत या असहमत हो जायें या फिर नज़रअंदाज़ कर दें। यह कुछ ठोस है, जिसे आप अभी देख रहे हैं, जिसका सामना कर रहे हैं। तो यह कोई धारणा या विचार नहीं है। हम अपनी रोज़ाना की सच्चाईयों से बाबस्ता हो रहे हैं, जो बहुत ही महीन और पेचीदा हैं। आगे बढ़ें, तो क्या इसका कारण विचार की शुरूआत है—मैं आपको बता नहीं रहा, आपको खुद ही इसमें उतरना होगा—खुदा के लिए कुछ तो आगे बढ़ें! जब मैं कहता हूँ 'खुदा के लिए', तो बस महज़..। सावधानी से खोजें, मेहरबानी करके। आदमी की बढ़ती हुई क्रूरताओं का, उसके व्यवहार का, उसके अहं का, हर चीज़ के प्रति उसकी निर्दयता का कारण क्या विचार है? समझे आप?

विचार और ज्ञान साथ-साथ चलते हैं। ज्ञान सदैव ही अज्ञानता से घिरा है, ठीक? यानी ज्ञान कभी पूर्ण नहीं हो सकता, संपूर्ण, और इसीलिए वह सदा अज्ञानता के अंधेरे में चलता है, ठीक? बिल्कुल, यह एकदम तर्कसंगत है। किसी भी चीज़ के बारे में कोई भी जानकारी पूर्ण नहीं है, यहां तक कि कंप्यूटर, या आपके पति या पत्नी अथवा बेटी के बारे में भी। तो

ज्ञान के साथ हमेशा अज्ञान की परछाई चिपकी रहती है, अतः वो अधूरा ही रहता है। और यह विचार, जो ज्ञान की ही पैदाइश है, क्या वो कारण है? सब समझ में तो आ रहा है न? कार चलाने वक्त तो विचार की ज़रूरत पड़ेगी ही, बिज़नस या दफ्तर में, फैक्टरी या फिर घर में खाना बनाते हुए या बर्तन धोते हुए भी आपको बुद्धि का इस्तेमाल तो करना ही होगा। शारीरिक तौर पर हम जो भी करते हैं, उसके लिए ज्ञान की ज़रूरत है। पर मानसिक स्तर पर, मनोवैज्ञानिक स्तर पर ज्ञान की, किसी जानकारी की क्या कतई भी ज़रूरत है? समझ रहे हैं न आप जो मैं कह रहा हूँ? कृपया सावधानी से आगे बढ़ें। और क्या स्रोत, दुखों, उलझनों, अनिश्चितताओं, असुरक्षा और बिखराव आदि से भरे इस जगत का मूल, क्या विचार ही इस सबका मूल कारण है? और अगर विचार ही मूल कारण है तो फिर उसका, विचार का अंत किया जा सकता है। ठीक?

जहां कारण है वहां उसका समाधान भी है। जहां शुरूआत है वहां अंत भी है। अगर आप तंबाकू पीते हैं, उसकी लत है आपको, ज़रूर उसका कोई कारण रहा होगा और उसका आप अंत भी कर सकते हैं। ठीक उसी तरह अगर विचार संसार की इस हालत का कारण है तो उसका अंत किया जा सकता है। और उस अंत से ही नए की शुरूआत हो सकती है—उस सब से सर्वथा भिन्न जिसे विचार ने रचा-संजोया है। आप सब समझ रहे हैं न? तो क्या विचार ही इस सबका मूल है?

क्या आप चाहेंगे कि मैं इस पर गहन चर्चा करूं? इसलिए नहीं ताकि आप उसका अनुसरण कर सकें, मैं कोई गुरु नहीं हूँ आपका। शुक्र है परवरदिगार का! मैं आपका रहनुमा नहीं हूँ, और न ही कोई दार्शनिक हूँ। लेकिन यह वक्ता इस मामले की गहराई तक गया है। उम्र भर उसने यही किया है और खुद से पता लगाया है—समझा-जाना है, इस सबकी वजह को खोज निकाला है। ध्यान तो केवल तभी होता है जब आप उस कारण

को खोज कर उसका अंत कर डालते हैं, तभी ध्यान का खिलना होता है। आप सब जो कर रहे हैं वो ध्यान नहीं है। ऐसा कहने के लिए माफी चाहता हूं, लेकिन सच्चाई यही है, भांति-भांति के साधनों से, क्रियाओं से मन को एकाग्र करने की कोशिश, और ऐसा ही सब कुछ, यह सब ध्यान नहीं है। ध्यान तो सहज आता है, बिन बुलाए ही, जब आप उस कारण से पार पा लेते हैं, ठीक? सो यही इस वक्ता का काम है, बिना किसी दावे के, प्रचार की किसी भावना के बिना, वो पुकारता है आपको, आओ मिल कर चलें और ढूंढ निकालें। आओ उसी राह पर, उसी सड़क पर साथ-साथ चलें, *यह पथ न आपका है न मेरा, यह समझ का, प्रज्ञा का मार्ग है*, यह समझ जो न तो वक्ता की है और न ही आपकी। समझदारी तो कारण को खोज निकालने में है। जब वो कारण पकड़ में आ जाता है तो चरम प्रज्ञा, प्रबुद्ध चेतना उदित होती है, जो अपने स्वभाव से ही करुणामयी प्रेम है।

सो हम यही पूछ रहे हैं, शायद और कोई वजह नहीं सिर्फ यही एक कारण है—विचार। देखा आपने, विचार के इस सवाल को हमने कभी नहीं उठाया, कभी इसकी गहराईयों में नहीं उतरे। साईंसदान अब इस छानबीन की शुरूआत कर रहे हैं, लेकिन वो तो शुरूआत भर ही है। हिंदुओं ने, प्राचीन हिंदुओं ने, कुछ हद तक इस दिशा में काम किया है, और फिर कहीं वो अटक गए। लेकिन हम, आम लोग, रोज़ाना की अपनी समस्याओं से लदे, चिंताओं में उलझे, दुख-दर्द और मोहजाल में फंसे जन-साधारण, हम यह पूछते हैं : क्या यह सब विचार का किया धरा है? विचार जिसमें भावनाएं, संवेदनाएं, भय और खुशियां सब शामिल हैं, वो सभी विचार का हिस्सा हैं। और अगर विचार ने ही यह संसार बनाया है जिसमें हम जी रहे हैं, जिसमें कुछ गजब की खूबसूरत चीज़ें भी हैं। गिरजे हैं, मंदिर-मस्जिद हैं, काव्य और साहित्य है। लेकिन इन गिरजाघरों में, मन्दिरों-मसीतों में जो कुछ भी है वो सब विचार द्वारा ही सहेजा गया है। कुछ

बरस पहले की बात है, भारत में, यही वक्ता पूरे भारत में जगह-जगह बोल रहा था, अपनी बात कह रहा था, इत्फाक से मि.गांधी आगे-आगे चल रहे थे। आप उन्हें महात्मा गांधी या कुछ भी कह सकते हैं जो भी अच्छा लगे। मि. गांधी यह कह रहे थे कि हर कोई मंदिरों में प्रवेश कर सकता है। उस समय सिर्फ ब्राह्मण ही मंदिरों में दाखिल हो सकते थे। और गांधी जी कह रहे थे, मंदिर ईश्वर का घर हैं, इनमें हर कोई जा सकता है। यह वक्ता भी पीछे-पीछे ही आ रहा था। सो अगले हफ्ते वो भी वहां जा पहुंचा, तो उन्होंने उससे पूछा, उसे फंसाने के लिए क्योंकि वक्ता भी ब्राह्मण था। पूछा उन्होंने, 'आपका क्या ख्याल है, क्या गैर-ब्राह्मणों को मंदिरों में दाखिल होने की इजाज़त मिलनी चाहिए?' और जवाब बहुत सीधा-सादा था, परमात्मा मंदिरों में नहीं रहता! अगर वो सचमुच कहीं है भी तो यकीनन कहीं और, किसी दूसरी ही जगह, जो आदमी के विचारों से अछूती है। लेकिन यह जवाब उन्हें पसंद नहीं आया।

तो मैं आप से यही पूछ रहा हूं कि क्या विचार ही इस सारी गड़बड़ी का कारण है? और अगर विचार ही इसकी वजह है तो विचार का अंत हो सकता है और कुछ सर्वथा नये की शुरूआत हो सकती है। और मानव के नाते यह आपकी ज़िम्मेदारी है, किसी व्यक्ति के रूप में नहीं, आदमी के रूप में, आदमी जो चीन में, भारत में, एशिया या अरब में, मध्य पूर्व या फिर पश्चिम में कहीं रहता है, यह उसी आदमी का सवाल है कि क्या यही कारण है? और अगर यही कारण है तो फिर इसे मिटाया कैसे जाए, ताकि इसका अंत हो सके। और फिर उस अंत से एक नयी शुरूआत हो, एक बिल्कुल ही नयी शुरूआत, जो कि असल क्रांति होगी, कम्युनिस्टों, आतंकियों आदि की नहीं। क्या है आपकी ज़िम्मेदारी और क्या है आपका जवाब? समझे आप? गेंद अब आपके पाले में है! यह मुहावरा समझ रहे हैं न आप? जैसे कि टेनिस के खेल में गेंद सामने वाले के पाले में

होती है और उसे खेलना अब सामने वाले की जिम्मेदारी हो जाती है। तो कैसे आप इस सवाल का जवाब देंगे? इन सारी वार्ताओं के दौरान साथ मिल कर और सवाल-जवाब के समय में भी इसे ढूंढने में हम एक दूसरे की मदद करेंगे, ठीक? आप को खुद इसे खोजना होगा ताकि आप महज़ एक अनुयायी ना रह जायें, आपके ऊपर ऐसी कोई सत्ता न हो जो आपको यह बताए कि क्या सोचना है और क्या करना है। तभी आप एक मुकम्मल आदमी होंगे।

६ जुलाई, १९८०

आज़ादी

कैसे कोई तबदील हो, कुछ होने-बनने की प्रक्रिया से अस्तित्व की स्थिति में रूपांतरण कैसे हो? वो शख्स जो कुछ होने के चक्र में फंसा है, संघर्ष और कामनाओं में उलझा है, वो खुद ही से भिड़ा हुआ है—वो उस स्थिति को कैसे जाने जो सद्गुण है, स्वतंत्रता है? उम्मीद है कि मैं सवाल को स्पष्ट कर पा रहा हूँ। यही तो है कुछ ना कुछ होने के लिए मैं बरसों जद्दोजहद करता हूँ : ईर्ष्या से मुक्त होने के लिए, उससे पीछा छोड़ने के लिए। कैसे मैं इसे छोड़ूँ और सहज हो जाऊँ, जैसा हूँ। क्योंकि जब तक मैं ऐसा कुछ करने के चक्र में रहता हूँ, जिसे मैं सदाचार कहता हूँ तो मैं ज़ाहिर तौर पर अपने ही चक्रव्यूह में फंस के रह जाता हूँ; और उस चक्रव्यूह में कोई स्वतंत्रता नहीं होती। सो मैं बस इतना ही कर सकता हूँ कि सजग हो जाऊँ, होने की अपनी इस प्रक्रिया के बारे में शांत सजग। अगर मैं छिछला हूँ, उथला-उथला, तो मैं शांत रूप से इस बारे में सजग हो सकता हूँ कि हाँ मैं छिछला हूँ, कुछ होने के किसी प्रयास में अटके बिना। अगर मैं क्रोधी हूँ, ईर्ष्यालू या बेरहम हूँ, दूसरों से जलता हूँ, तो मैं उसके बारे में होशपूर्ण रह सकता हूँ, बिना कोई टकराव खड़ा किए। जिस घड़ी आप किसी गुण-अवगुण में उलझते हैं, आप संघर्ष को ही बल देने लगते हैं, और यूनं प्रतिरोध की दीवार को और मज़बूती दे देते हैं। प्रतिरोध की इस दीवार को ही 'सदाचार' समझ लिया जाता है, किंतु ऐसे सदाचारी के जीवन में सत्य का दर्शन कभी नहीं हो सकता। वो तो केवल स्वतंत्र शख्स ही है जिसके दर पर सत्य दस्तक देता है, और हाँ, आज़ाद होने के लिए याददाश्त का पोषण काम नहीं आता, वह तो सदाचार है, यानी गुण-अवगुण में उलझ कर रह जाना।

सो निरंतर चलती इस जंग के बारे में, इस जद्दोजहद के बारे में हमें चौकन्ना रहना होगा। बिना किसी टकराव के, बिना निंदा के महज़ सजगता, और अगर आप सचमुच ही सजग होते हैं, शांत, लेकिन चौकसी से भरे हुए, तो आप देखेंगे कि ईर्ष्या, जलन, लोभ, हिंसा और ऐसी तमाम चीज़ें गायब हो जाती हैं, और तब एक व्यवस्था उभरती है—सहज-स्फूर्त, एक व्यवस्था जो सदाचार नहीं होती, एक बंद दायरे में बंधी नहीं होती। क्योंकि सद्गुण, नेकी तो स्वतंत्रता है, किसी तरह की मजबूरी नहीं है। सिर्फ आज़ादी में ही सत्य उद्घाटित हो सकता है। इसलिए नेकी ही बुनियादी मुद्दा है, न कि सदाचारी होना, क्योंकि नेकी ही व्यवस्था लाती है। वो सिर्फ सदाचारी ही है जो उलझा है, छंद में पड़ा है, वो केवल सदाचारी ही है जो प्रतिरोध के यंत्र के रूप में अपनी इच्छा शक्ति को मज़बूत करता है, और इच्छा शक्ति वाला शख्स कभी सत्य तक नहीं पहुंच सकता, क्योंकि वो कभी मुक्त नहीं होता। जीवन, जो उसे पहचानता है जो है, उसे कबूल करते हुए, उसके संग जीते हुए—उसे बदलने की कोशिश नहीं करता, उसकी निंदा नहीं करता—वही नेकी में, सद्व्यवहार में जीता है, और वहीं स्वतंत्रता होती है। सिर्फ वहां जहां मन स्मृतियों का पोषण नहीं करता, प्रतिरोध के शस्त्र के रूप में जब वह कायदे-कानून का, सदाचार का हवाला नहीं देता, वहीं स्वतंत्रता है, मुक्ति है, और तभी वो यथार्थ उभरता है, जिसका आनंद भोगने योग्य है।

सवाल : लगता नहीं कि आप के विचार में भारत में हमें आज़ादी मिली है। आप के मतानुसार असल आज़ादी है क्या?

कृष्णमूर्ति : जनाब आज़ादी जब एक राष्ट्रीय रूप ले लेती है तो महज़ एक अलगाव हो कर रह जाती है, और अलगाव तो लाज़मी तौर पर टकरावों की तरफ ले जाता है, क्योंकि अलग-थलग हो कर तो कुछ रह ही नहीं सकता। होने का मतलब ही संबंधित होना है, अपने आप को कौमी हदबंदियों में जुदा कर

लेना तो सिर्फ उलझनों को ही बुलावा देगा, टकराव, जंग, भुखमरी और दुख-क्लेशों को न्योता देगा, कितनी ही बार यह बात साबित हो चुकी है। सो एक अलग राज के रूप में आज़ादी लाज़मी ही टकराव और जंग ही ले कर आएगी, क्योंकि ज़्यादातर लोगों के लिए इस का मतलब ही अलगाव है। और जब आप खुद को एक राष्ट्रीय पहचान के रूप में अलग कर लेते हैं, तो क्या यह आज़ादी है? क्या आप ने शोषण से मुक्ति पा ली, वर्ग-संघर्ष से, भुखमरी से, मज़हबी टकराव से, पंडे-पुजारियों से, सांप्रदायिक तनाव से, लीडरों से? नहीं। आप ने केवल गोरे लुटेरों को निकाल बाहर किया है, उनकी जगह काले हाकिमों ने ले ली है—वो शायद और भी निर्मम होंगे। सब कुछ तो पहले जैसा ही है, वही शोषण, वही पंडे-पुरोहित और संस्थागत धर्म, वही अंधविश्वास और वर्ग-युद्ध। क्या इससे हमें आज़ादी मिली है? बात तो यह है जनाब कि हम आज़ाद होना ही नहीं चाहते। बराय मेहरबानी खुद को मूर्ख मत बनायें। क्योंकि आज़ादी का मतलब होता है बुद्धिमानी, प्रेम; उसमें निहित है अ-शोषण और सत्ता के सामने घुटने टेकने से इन्कार। आज़ादी का मतलब है अद्वितीय सद्गुण, अद्भुत खूबी। जैसा कि मैंने कहा, सदाचार तो सदा ही अलगाव की प्रक्रिया है, अलगाव और सदाचार तो साथ-साथ ही चलते हैं, जबकि सद्गुण और आज़ादी का चोली दामन का साथ है। एक प्रभुसत्तासंपन्न राष्ट्र हमेशा अलग-थलग ही रहता है, और इसीलिए कभी आज़ाद नहीं हो सकता; यह निरंतर कलह की, शक-शुबह की, टकराव तथा युद्धों की वजह बना रहता है।

बेशक आज़ादी की शुरूआत व्यक्ति से होती है, जो कि एक मुकम्मल प्रक्रिया है, समूह के विरोध में नहीं। व्यक्ति ही संसार की पूरी प्रक्रिया है, और अगर वो ही खुद को राष्ट्रीयता अथवा सदाचार के नाम पर अलग-थलग कर लेता है, बांट लेता है, तो वो ही दुख और बरबादी की वजह है। लेकिन अगर व्यक्ति—जो

कि समस्त प्रक्रिया है, समूह के विरोध में नहीं, बल्कि जो खुद ही समूह का परिणाम है, पूर्ण का—अगर वो व्यक्ति खुद को तबदील कर लेता है, अपने जीवन को बदल लेता है, तो ही वो स्वतंत्र होता है। क्योंकि वो संपूर्ण प्रक्रिया का परिणाम है, जब वह खुद को राष्ट्रीयता से, लोभ और शोषण से मुक्त कर लेता है तो संपूर्ण पर उसका सीधा असर होता है। व्यक्ति का पुनरुत्थान भविष्य में नहीं है बल्कि अभी, अगर आप उसे कल के लिए टाल रहे हैं तो आप अंधेरे में भटक रहे हैं, उलझनों को बुलावा दे रहे हैं। पुनरुत्थान तो अभी है, कल नहीं, क्योंकि समझ तो सिर्फ वर्तमान में है। इस क्षण आप उसे नहीं समझते क्योंकि आप अपना दिलो-दिमाग उसमें झोंकते नहीं, जिसे आप समझना चाहते हैं उसमें पूरा ध्यान नहीं लगाते। अगर आप पूरे दिलो-दिमाग से किसी चीज़ को समझना चाहेंगे तो आप समझ जायेंगे। श्रीमान् अगर आप हिंसा के मूल की तलाश में जी-जान लड़ा देते हैं, उसकी बाबत अगर पूरी तरह से सचेत हैं, तो आप इसी क्षण अहिंसक होंगे। लेकिन बदकिस्मती से हमने अपने दिमागों को इतना संस्कारित कर लिया है सामाजिक नैतिकता से, धार्मिक पलायनवाद से कि हम सीधे तौर पर उसे देखने में ही असमर्थ हो गए हैं, यही हमारी मुश्किल है।

तो समझदारी हमेशा वर्तमान में है, भविष्य में नहीं। बुद्धिमता इस क्षण है, आने वाले कल में नहीं। और आज़ादी, जो कि अलगाव नहीं है, तो केवल तभी हो सकती है जब हममें से हर कोई समस्त के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी को समझता है। व्यक्ति समग्र की संतान है—वो उससे जुदा नहीं है। आखिरकार आप पूरे भारत का परिणाम हैं, पूरी मानवता का। आप खुद को भले ही किसी नाम से पुकारें, आप पूरी प्रक्रिया का परिणाम हैं, मतलब यह कि आदमी हैं। और अगर आप, आपका मनोगत रूप, मुक्त नहीं है तो बाहरी तौर पर आप कैसे आज़ाद हो सकते हैं; उस बाहरी स्वतंत्रता का फिर क्या मूल्य होगा? आप

के कई सारे राज्यपाल हो सकते हैं—क्या यह आज़ादी है? आप प्रांतों की गिनती बढ़ा सकते हैं, क्योंकि हर कोई नौकरी चाहता है, पर क्या यह आज़ादी है? श्रीमान सच तो यह है कि हम थोथी लप्फाजी ही करते आये हैं, प्रोपेगंडे के प्रभाव में यानी झूठ में जीते आये हैं। हमने खुद कभी समस्याओं पर गौर ही नहीं किया, क्योंकि ज़्यादातर लोग पिछलग्गू होना ही पसंद करते हैं। हम सोचना और पता लगाना नहीं चाहते, क्योंकि सोचना तकलीफदेह है, पर्दे उघाड़ने वाला। या तो हम सोचते हैं और भ्रमों को टूटता हुआ देखकर सभी में दोष देखना शुरू कर देते हैं—या फिर सोचते-विचारते हैं और पार निकल जाते हैं। और जब आप पार हो जाते हैं, सारी चिंतन प्रक्रिया से परे, वहीं आज़ादी है। और उसी में आनंद है, एक सृजनात्मक अस्तित्व है, जिसे अपने अलग-थलग अस्तित्व में जीने वाला सदाचार का पालन करने वाला व्यक्ति कभी समझ ही नहीं सकता।

सो हमारी मुश्किल यह है कि हमारी सोच इधर-उधर व जहां-तहां भटकती रहती है, स्वाभाविक है कि हम उसमें व्यवस्था लाना चाहते हैं। किंतु यह व्यवस्था लाई कैसे जाए? देखिए एक तेज़ घूमती मशीन को समझने के लिए, हमें उसे धीमा करना पड़ता है, पड़ता है ना? किसी प्रबल इंजन को समझना है तो रफ्तार घटा कर उसका अध्ययन करना होगा, लेकिन अगर आप उसे बंद कर देते हैं तो वह एक मृत-जड़ हो जाएगी, और मुर्दा चीज़ को तो कभी समझा नहीं जा सकता। सिर्फ जीवंत शै को ही समझा जा सकता है। ऐसा मन, जो बाधाएं खड़ी करके या अलग-थलग हो कर विचारों का गला घोटता है, कभी बुद्धिमान नहीं हो सकता, किंतु मन विचारों को धीमा करके उनकी प्रक्रिया को समझ सकता है। अगर आप ने कभी धीमी गति की फिल्म देखी हो तो घोड़े के कूदते वक्त उसकी मांसपेशियों में होने वाली गज़बनाक हरकतों को आप अच्छे से देख सकते हैं, लेकिन जब वो झट से फलांग जाता है, वो खूबसूरती खो

जाती है, क्योंकि सब बिजली की रफ्तार से घट जाता है। उसी तरह मन जब धीमे-धीमे चलता है क्योंकि वो हर विचार को समझना चाहता है, जैसे ही वो उठना शुरू होता है, तो वहां विचार की जकड़ से छुटकारा मिलता है, अनुशासित और बांध-बांध कर रखे गए विचारों से मुक्ति। विचार तो यादों का ही प्रतिकर्म हैं, इसलिए विचार कभी सृजनात्मक नहीं हो सकते। जब आप नए को नए के ही रूप में मिलते हैं, ताज़े को ताज़ा ही देखते हैं, तभी सृजनात्मक हस्ती उभरती है। मन तो एक रिकार्डर है, यादों को संजोने वाला संग्रहकर्ता, और जब तक चुनौतियां यादों को जीवन देती रहती हैं, विचारों की हिलजुल चलती ही रहती है। लेकिन अगर हर सोच को गौर से देखा जाए, महसूस किया जाए, उसकी गहराई में उतरा जाए, और पूरी तरह समझा जाए, तो आप देखेंगे कि यादें मुझाने लगती हैं। हम मानसिक स्मृतियों की बात कर रहे हैं, तथ्यपरक स्मृति की नहीं।

बंबई, ८ मार्च १९४८

खण्ड दो

“मैं समझता हूँ कि कभी-कभी अवकाश, रिट्रीट, में जाना बहुत जरूरी है, जो कुछ भी आप करते रहे हैं उस सबको बंद कर देना, अपने विश्वासों को और अनुभवों को एकदम से छोड़ देना तथा उन पर नये सिरे से विचार करना, ना कि एक मशीन की तरह दोहराते जाना... तब आप अपने दिलो-दिमाग में ताजी हवा को बहने देंगे।”

-जे. कृष्णमूर्ति

**जे. कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के आलोक में
जीवन के गहन प्रश्नों पर आयोजित
के.एफ.आई. राजघाट में दो कार्यक्रम**

स्टडी रिट्रीट

१३ से १७ अगस्त २०११ तक युवाओं के लिए द्विभाषी रिट्रीट

विषय : सीखना और सुजनशीलता

कृपया सहभागी १३ अगस्त की शाम तक पहुंच जायें।

कृष्णमूर्ति हिन्दी गैदरिंग २०११

३० अक्टूबर २०११ से ३ नवम्बर २०११

विषय : स्वयं को समझने की आवश्यकता

इस कार्यक्रम में सहभागी ३० अक्टूबर २०११ शाम तक आ जायें और सम्मेलन का समापन ३ नवम्बर सुबह ११ बजे को रखा गया है।

जे. कृष्णमूर्ति सम्मेलन (हिंदी गैदरिंग) का उद्देश्य है: कृष्णमूर्ति की अंतर्दृष्टियों के प्रकाश में स्वयं का अध्ययन करते हुए जीवन के बुनियादी प्रश्नों की छानबीन करना। प्रकृति के खामोश एवं खूबसूरत वातावरण में आयोजित इस रिट्रीट में शामिल होने वाले सहभागियों को पर्याप्त अवकाश दिया जाता है ताकि वे खुद के साथ रह सकें, प्रकृति

एवं स्वयं का अवलोकन कर सकें, तथा आपस में गहरी बातचीत, चिंतन-मनन कर सकें, प्रतिदिन के कार्यक्रम में मौन होकर देखना-सुनना, छोटे समूहों में संवाद, कृष्णमूर्ति की वार्ताओं का वीडियो शो, और प्रकृति भ्रमण शामिल है। इनमें युवा एवं विद्यार्थी भी शामिल हो सकते हैं। एक व्यक्ति के लिये रिट्रीट का कुल शुल्क १६०० रुपये हैं जिसमें आवास, भोजन, अध्ययन सामग्री एवं कार्यक्रम का खर्च शामिल है। विद्यार्थियों के लिये कुछ छूट का भी प्रावधान है।

रजिस्ट्रेशन के लिये संपर्क करें:

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर,
राजघाट फोर्ट, वाराणसी २२१ ००१
ईमेल : kcentrevns@gmail.com फोन : 0542-2441289

कॉपीराइट सूचना

जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अंतर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् १९६८ के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका, ओहायो, कैलीफोर्निया का है। सन् १९६८ के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

हिन्दी में उपलब्ध कृष्णमूर्ति साहित्य

कृष्णमूर्ति की परिचयात्मक पुस्तकें :

१. ज्ञात से मुक्ति	रु. ३०.००
२. ध्यान	रु. ४०.००
३. हिंसा से परे	रु. ८०.००
४. गरुड़ की उड़ान	रु. ७०.००
५. प्रथम और अन्तिम मुक्ति (सजिल्द द्विभाषी संस्करण)	रु. ५००.००
६. प्रथम और अन्तिम मुक्ति (पेपरबैक)	रु. १७५.००
७. आमूल क्रान्ति की आवश्यकता	रु. १००.००
८. अन्तिम वार्ताएँ	रु. ७०.००
९. आपको अपने जीवन में क्या करना है	रु. १७५.००

शिक्षा संबंधी पुस्तकें :

१. शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य	रु. ६०.००
२. शिक्षा संवाद	रु. ८०.००
३. स्कूलों के नाम पत्र	रु. ६०.००
४. स्कूलों को पत्र भाग-२	रु. ४०.००
५. शिक्षा क्या है?	रु. १७५.००
६. संस्कृति का प्रश्न	रु. ५०.००

कृष्णमूर्ति का स्वयं का लेखन :

१. जीवन भाष्य-I	रु. ७०.००
२. जीवन भाष्य-II	रु. १२०.००
३. जीवन भाष्य-III	रु. १४०.००

थीम बुक्स :

१. जीवन और मृत्यु	रु. १२५.००
२. ईश्वर क्या है?	रु. १२५.००
३. ध्यान	रु. १२५.००
४. सोच क्या है?	रु. १२५.००

पुस्तिकाएँ :

५. मृत्यु और उसके बाद	रु. ४०.००
६. वाशिंगटन वार्ताएँ	रु. २५.००
७. सुखी वही जो कुछ नहीं है	रु. २०.००
८. सीखने की कला	रु. १५.००
९. आन्तरिक प्रस्फुटन	रु. १०.००
१०. जीवन की पुस्तक	रु. १०.००
११. प्रेम : स्वयं से एक संलाप	रु. १०.००
१२. सत्य एक पथहीन भूमि है	रु. १०.००
१३. स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व एवं अनुशासन	रु. १०.००
१४. ध्यान में मन	रु. १०.००
१५. परम्परा जिसने अपनी आत्मा खो दी है	रु. ५.००

हिन्दी डी.वी.डी.

“बुनियादी बदलाव : एक चुनौती”	रु. २००.००
------------------------------	------------

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी-२२१००१

ईमेल: kcentrevns@gmail.com फोन: ०५४२-२४४१२८६, २४४०४५३

‘कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया’ के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस-१/२०८ के-१, नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी २२१ ००२ से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी २२१ ००१ (उ.प्र.) से प्रकाशित।

संपादक : विजय छाबड़ा